



ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्म-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)

3049-2327(Print)

IIFS Impact Factor-2.25

Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025

Page No.- 176-186

©2025 Gyanvividha

<https://journal.gyanvividha.com>

डॉ. विनय कुमार सिन्हा

(असिस्टेंट प्रोफेसर),

समाजशास्त्र विभाग,

राजेन्द्र मिश्रा महाविद्यालय,

सहरसा, बिहार.

Corresponding Author :

डॉ. विनय कुमार सिन्हा

(असिस्टेंट प्रोफेसर),

समाजशास्त्र विभाग,

राजेन्द्र मिश्रा महाविद्यालय,

सहरसा, बिहार.

सामाजिक ध्रुवीकरण में बिहार की जाति गणना की भूमिका : एक अध्ययन

सारांश : प्रस्तुत शोध पत्र बिहार सरकार द्वारा 2023 में जारी जाति-आधारित गणना के सामाजिक-राजनीतिक प्रभावों का समाज शास्त्रीय विश्लेषण करता है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह जांचना है कि इस जाति गणना ने बिहार के सामाजिक ताने-बाने, विशेषकर सामाजिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित किया है।

एक ओर जहाँ इस गणना को सामाजिक न्याय और लक्षित कल्याणकारी योजनाओं के लिए एक आवश्यक कदम के रूप में प्रस्तुत किया गया, वहीं दूसरी ओर इसने जातिगत पहचान को और अधिक सुदृढ़ कर दिया है। इससे राजनीतिक विमर्श और सामाजिक संबंधों में तनाव बढ़ा है। यह शोध पत्र द्वितीयक स्रोतों, जैसे मीडिया रिपोर्टों और राजनीतिक बयानों के विश्लेषण के माध्यम से यह तर्क प्रस्तुत करता है कि जाति गणना ने, अनजाने में ही सही, विभिन्न जाति समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा और अलगाव की भावना को तीव्र करके सामाजिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा दिया है। निष्कर्ष यह है कि सामाजिक न्याय का यह उपकरण समाज में पहले से मौजूद दरारों को और गहरा करने का एक अप्रत्याशित माध्यम भी बन गया है।

बीज शब्द : सामाजिक ध्रुवीकरण, जाति-आधारित गणना, सामाजिक न्याय एवं सामाजिक-आर्थिक स्थिति।

परिचय :

पृष्ठभूमि : जाति, डेटा और सामाजिक न्याय का द्वंद्व :- आधुनिक लोकतंत्रों में, डेटा-आधारित शासन (data-driven governance) को प्रभावी और न्यायसंगत नीति-निर्माण की आधारशिला माना जाता है। भारत जैसे विविधतापूर्ण और गहरे सामाजिक स्तरीकरण वाले देश में, यह तर्क और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है। भारतीय समाज की

सबसे स्थायी और जटिल वास्तविकता जाति व्यवस्था रही है, जो केवल एक सामाजिक पहचान ही नहीं, बल्कि ऐतिहासिक रूप से अन्याय, भेदभाव और अवसरों की असमानता का एक प्रमुख स्रोत भी रही है (अम्बेडकर, 1936)। भारतीय संविधान ने अनुच्छेद 15 और 16 के माध्यम से इस ऐतिहासिक अन्याय को संबोधित करने के लिए सकारात्मक कार्रवाई (affirmative action), अर्थात् आरक्षण, का प्रावधान किया। हालाँकि, इन नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सबसे बड़ी चुनौती विश्वसनीय और अद्यतन जातिगत आँकड़ों का अभाव रहा है। ब्रिटिश काल में 1931 में हुई अंतिम जाति-आधारित जनगणना के बाद से, स्वतंत्र भारत में ऐसी कोई व्यापक गणना नहीं हुई, जिससे यह बहस लगातार बनी रही कि विभिन्न जाति समूहों की वास्तविक सामाजिक-आर्थिक स्थिति क्या है (देशपांडे, 2007)।

इसी राष्ट्रव्यापी बहस के केंद्र में बिहार राज्य ने एक साहसी कदम उठाते हुए 2022-2023 में अपनी जाति-आधारित गणना संपन्न कराई। यह कदम बिहार के उस विशिष्ट सामाजिक-राजनीतिक इतिहास का परिणाम है, जो 1990 में मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद पिछड़ी जातियों (OBCs) के राजनीतिक उभार का साक्षी रहा है। बिहार में 'सामाजिक न्याय' की राजनीति दशकों से चुनावी विमर्श का केंद्र रही है, और इस गणना को उसी राजनीति की तार्किक परिणति के रूप में देखा गया (यादव, 2019)। सरकार का आधिकारिक पक्ष यह था कि यह सर्वेक्षण "सबका साथ, सबका विकास" के लक्ष्य को प्राप्त करने, हाशिए पर मौजूद समुदायों की सटीक पहचान करने और उनके उत्थान के लिए लक्षित योजनाएँ बनाने हेतु अनिवार्य है (बिहार सरकार, 2023)।

समस्या का सूत्रीकरण : सामाजिक न्याय बनाम सामाजिक ध्रुवीकरण- यद्यपि इस पहल के उद्देश्य प्रशंसनीय प्रतीत होते हैं, इसने एक गंभीर समाजशास्त्रीय प्रश्न को जन्म दिया है: क्या जाति की

पहचान को आधिकारिक रूप से मज़बूत करना अंततः एक समतामूलक समाज के निर्माण में सहायक है या यह सामाजिक विभाजन को और गहरा करता है? आलोचकों का तर्क है कि जब राज्य स्वयं जाति को आँकड़ों और नीतियों का प्राथमिक आधार बनाता है, तो वह अनजाने में ही जातिगत चेतना को मज़बूत करता है (चंद्रा, 2004)। यह प्रक्रिया सामाजिक ध्रुवीकरण (Social Polarization) को जन्म दे सकती है, जिसे समाज का 'हम' बनाम 'वे' ('us' vs. 'them') की भावना के आधार पर दो या दो से अधिक विरोधी समूहों में तीव्र विभाजन के रूप में परिभाषित किया जाता है। ध्रुवीकरण केवल मतभेद तक सीमित नहीं है; यह अंतर-समूह अविश्वास, संचार में कमी और संसाधनों के लिए बढ़ती प्रतिस्पर्धा को भी दर्शाता है (DiMaggio, Evans, & Bryson, 1996)।

इस संदर्भ में, बिहार की जाति गणना एक दोधारी तलवार के रूप में उभरती है। एक ओर, यह पिछड़े और अति-पिछड़े वर्गों को उनकी संख्यात्मक शक्ति का एहसास कराकर राजनीतिक सौदेबाज़ी की क्षमता प्रदान करती है, जिसे 'प्रतिनिधित्व का लोकतंत्र' (democracy of representation) कहा जा सकता है। दूसरी ओर, यह आँकड़े अगड़ी जातियों में असुरक्षा और वंचना की भावना पैदा कर सकते हैं और विभिन्न पिछड़े समूहों के बीच भी हिस्सेदारी को लेकर एक नई प्रतिस्पर्धा को जन्म दे सकते हैं, जिससे सामाजिक सौहार्द के ताने-बाने को क्षति पहुँच सकती है।

शोध समस्या : इस अध्ययन की केंद्रीय समस्या यह है कि बिहार की जाति गणना, जिसे सामाजिक न्याय और समावेशी विकास का एक उपकरण माना जा रहा है, ने सामाजिक सामंजस्य को बढ़ाने के बजाय सामाजिक ध्रुवीकरण को किस हद तक और किन प्रक्रियाओं के माध्यम से प्रभावित किया है? यह शोध इस बात की गहराई से जाँच करेगा कि जातिगत आँकड़ों के सार्वजनिक होने से राजनीतिक दलों ने अपने विमर्श को कैसे बदला, मीडिया ने इसे कैसे

प्रस्तुत किया और इसने विभिन्न जाति समूहों के बीच सामाजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक दूरियों को कैसे प्रभावित किया।

शोध के उद्देश्य : जाति गणना के घोषित उद्देश्यों और उसके पीछे निहित राजनीतिक मंशा का आलोचनात्मक विश्लेषण करना।

- यह जाँचना कि इस गणना ने बिहार में जातिगत पहचान की मुखरता (salience of caste identity) को सार्वजनिक और निजी जीवन में किस प्रकार प्रभावित किया है।
- राजनीतिक दलों द्वारा जातिगत आँकड़ों का उपयोग वोट बैंक की राजनीति और चुनावी गोलबंदी को मज़बूत करने के लिए कैसे किया जा रहा है, इसका अध्ययन करना।
- समाज के विभिन्न जाति समूहों (अगड़ी जातियाँ, पिछड़ी जातियाँ, अति पिछड़ी जातियाँ, और दलित) के बीच आपसी संबंधों, धारणाओं और संभावित तनावों पर पड़े प्रभाव का मूल्यांकन करना।
- "सामाजिक न्याय" के विमर्श की तुलना में "सामाजिक विभाजन" के अनुभवजन्य परिणामों का विश्लेषण करना।

परिकल्पना (Hypothesis) : इस शोध की केंद्रीय परिकल्पना यह है कि: "बिहार जाति गणना ने जातिगत जनसांख्यिकी को आधिकारिक रूप से प्रमाणित करके जातिगत चेतना को तीव्र कर दिया है। इस प्रक्रिया ने राजनीतिक दलों को 'आबादी के अनुपात में हिस्सेदारी' के नारे पर आधारित गोलबंदी करने में सहायता की है, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न जाति समूहों के बीच संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ी है और सामाजिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि हुई है।"

संबंधित साहित्य की समीक्षा (Literature Review) : इस शोध विषय से संबंधित साहित्य को मुख्य रूप से चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है: (1) भारत में जाति व्यवस्था का

समाजशास्त्रीय सिद्धांत, (2) भारतीय राजनीति में जाति का राजनीतिकरण, (3) बिहार की राजनीति और समाज में जाति की विशिष्ट भूमिका, और (4) जाति गणना और सामाजिक ध्रुवीकरण पर समकालीन बहस।

1. भारत में जाति व्यवस्था का समाजशास्त्रीय सिद्धांत- जाति व्यवस्था का अध्ययन भारतीय समाजशास्त्र का केंद्र बिंदु रहा है। **बी.आर. अम्बेडकर (1936)** ने अपनी युगांतकारी कृति 'Annihilation of Caste' में जाति को केवल श्रम का विभाजन नहीं, बल्कि श्रमिकों का श्रेणीबद्ध असमानता पर आधारित विभाजन बताया, जो सामाजिक गतिशीलता को पूरी तरह से रोकता है। वहीं, **एम.एन. श्रीनिवास (1952)** ने 'संस्कृतिकरण' और 'प्रभु जाति' जैसी अवधारणाएँ दीं, जिससे यह समझने में मदद मिली कि जाति व्यवस्था पूरी तरह से स्थिर नहीं है और इसमें सीमित गतिशीलता की गुंजाइश है। हालाँकि, श्रीनिवास की अवधारणाएँ मुख्य रूप से सांस्कृतिक गतिशीलता पर केंद्रित थीं, जबकि अम्बेडकर ने जाति के संरचनात्मक अन्याय और उसके उन्मूलन पर जोर दिया। इन foundational works से यह स्पष्ट होता है कि जाति केवल एक पहचान नहीं, बल्कि शक्ति, संसाधन और सामाजिक प्रतिष्ठा के असमान वितरण की एक संस्थागत व्यवस्था है, जिसे कोई भी नीतिगत हस्तक्षेप सीधे तौर पर प्रभावित करता है।

2. भारतीय राजनीति में जाति का राजनीतिकरण- स्वतंत्रता के बाद, लोकतंत्र ने जाति को एक नया जीवन दिया। **रजनी कोठारी (1970)** ने तर्क दिया कि राजनीति ने जाति को समाप्त नहीं किया, बल्कि "जाति का राजनीतिकरण" कर दिया। उनके अनुसार, लोकतंत्र ने जातिगत समूहों को अपनी पहचान के आधार पर संगठित होने और सत्ता में अपनी हिस्सेदारी की माँग करने के लिए एक मंच प्रदान किया। इस प्रक्रिया ने भारतीय राजनीति को गहराई से प्रभावित किया। **क्रिस्टोफ़ जैफ़रलॉट (2003)** ने अपने अध्ययन 'India's Silent Revolution' में दिखाया

कि कैसे 1980 और 1990 के दशक में, विशेषकर मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद, उत्तरी भारत में पिछड़ी जातियों का राजनीतिक उभार हुआ। यह साहित्य स्पष्ट करता है कि जातिगत आँकड़ों की माँग और उसका उपयोग कोई नई घटना नहीं है, बल्कि यह पहचान की राजनीति (Identity Politics) का एक विस्तारित रूप है, जहाँ संख्यात्मक शक्ति को राजनीतिक शक्ति में बदलने का प्रयास किया जाता है। **कंचन चंद्रा (2004)** का काम यह बताता है कि जातीय दल कैसे संरक्षण (patronage) और जातीय गणनाओं (ethnic headcounts) के आधार पर सफल होते हैं, जो सीधे तौर पर बिहार की वर्तमान स्थिति को समझने में मदद करता है।

3. बिहार की राजनीति और समाज में जाति की भूमिका-

बिहार का सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य हमेशा से ही जातिगत समीकरणों से अत्यधिक प्रभावित रहा है। यहाँ की राजनीति में अगड़ी जातियों के प्रभुत्व को पिछड़ी जातियों द्वारा दी गई चुनौती का एक लंबा इतिहास रहा है। 1990 के दशक में लालू प्रसाद यादव का उदय और 'सामाजिक न्याय' की राजनीति का बोलबाला इसी प्रक्रिया का परिणाम था (वर्मा, 2010)। यह साहित्य दर्शाता है कि बिहार में जाति केवल एक सामाजिक श्रेणी नहीं, बल्कि राजनीतिक लामबंदी का सबसे शक्तिशाली उपकरण है। अध्ययनों से पता चलता है कि यहाँ विकास के मानक भी अक्सर जातिगत निष्ठाओं के आधार पर तय होते रहे हैं। इसलिए, बिहार में जाति गणना का निर्णय केवल एक प्रशासनिक कवायद नहीं है, बल्कि यह दशकों से चली आ रही 'सामाजिक न्याय' की राजनीति का एक महत्वपूर्ण अध्याय है, जिसका उद्देश्य सत्ता के समीकरणों को नए सिरे से परिभाषित करना है।

4. जाति गणना और सामाजिक ध्रुवीकरण पर

समकालीन बहस- जाति गणना के संभावित प्रभावों पर अकादमिक और सार्वजनिक क्षेत्र में तीव्र बहस

मौजूद है। **सतीश देशपांडे (2007)** जैसे समाजशास्त्रियों ने तर्क दिया है कि जातिगत आँकड़ों के अभाव में सकारात्मक कार्रवाई की नीतियाँ अनुमानों पर आधारित हैं और एक विश्वसनीय डेटाबेस इन नीतियों को अधिक तार्किक और प्रभावी बना सकता है। समर्थकों का मानना है कि यह "आँकड़ों का लोकतंत्र" (democracy of data) है, जो हाशिए पर मौजूद समूहों की वास्तविक स्थिति को उजागर करेगा।

इसके विपरीत, आलोचक सामाजिक ध्रुवीकरण के खतरे की ओर इशारा करते हैं। उनका तर्क है कि यह गणना समाज को जातिगत खाँचों में और अधिक मज़बूती से बाँध देगी, जिससे एक नागरिक के रूप में पहचान कमज़ोर होगी और जातिगत पहचान प्रमुख हो जाएगी। यह आशंका व्यक्त की जाती है कि आँकड़ों का उपयोग राजनीतिक दल वोट बैंकों को मज़बूत करने और विभिन्न जाति समूहों के बीच एक शून्य-राशि का खेल (zero-sum game) बनाने के लिए करेंगे, जहाँ एक समूह का लाभ दूसरे समूह की हानि के रूप में देखा जाएगा (चिब्वर एवं वर्मा, 2014)। यह प्रक्रिया सामाजिक विश्वास को कम करती है और अंतर-समूह संघर्ष को बढ़ावा दे सकती है।

इस साहित्य समीक्षा से यह स्पष्ट है कि जहाँ जाति और राजनीति के अंतर्संबंध पर व्यापक शोध मौजूद है, वहीं बिहार जाति गणना के तत्काल बाद सामाजिक ध्रुवीकरण पर इसके वास्तविक प्रभाव का अनुभवजन्य अध्ययन अभी भी एक शोध-रिक्तता (research gap) है। प्रस्तुत अध्ययन इसी रिक्तता को भरने का प्रयास करता है।

शोध प्रविधि (Research Methodology) : इस अध्ययन का उद्देश्य बिहार जाति गणना के सामाजिक ध्रुवीकरण पर पड़ने वाले प्रभावों का एक व्यवस्थित और गहन समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है। चूँकि यह विषय सामाजिक धारणाओं, राजनीतिक विमर्श और मीडिया नैरेटिव की जटिलताओं से संबंधित है, इसलिए इस शोध के लिए **गुणात्मक**

(Qualitative) शोध डिज़ाइन को अपनाया गया है। यह दृष्टिकोण हमें आँकड़ों और घटनाओं के पीछे छिपे अर्थों, संदर्भों और प्रक्रियाओं को गहराई से समझने में सक्षम बनाता है। यह अध्ययन मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों (Secondary Sources) पर आधारित होगा।

1. आँकड़ों के स्रोत (Data Sources)

इस शोध के लिए निम्नलिखित द्वितीयक स्रोतों से आँकड़े एकत्र किए जाएंगे :

- **सरकारी रिपोर्ट** : बिहार सरकार द्वारा प्रकाशित 'बिहार जाति आधारित गणना-2023' की आधिकारिक रिपोर्ट इस अध्ययन का प्राथमिक स्रोत होगी। इससे न केवल आँकड़े प्राप्त होंगे, बल्कि सरकार के उद्देश्यों और वर्गीकरण के आधार को भी समझने में मदद मिलेगी।
- **मीडिया रिपोर्ट** : राष्ट्रीय और क्षेत्रीय समाचार पत्रों (जैसे - द हिन्दू, इंडियन एक्सप्रेस, दैनिक जागरण, हिंदुस्तान) और समाचार वेबसाइटों (जैसे - बीबीसी हिंदी, द प्रिंट) में गणना की घोषणा से लेकर आँकड़े जारी होने के बाद तक प्रकाशित लेखों, संपादकीयों और समाचार रिपोर्टों का विश्लेषण किया जाएगा।
- **राजनीतिक विमर्श** : प्रमुख राजनीतिक दलों (जैसे - जदयू, राजद, भाजपा, कांग्रेस आदि) के प्रवक्ताओं और शीर्ष नेताओं द्वारा दिए गए सार्वजनिक भाषण, प्रेस कॉन्फ्रेंस, और उनके आधिकारिक सोशल मीडिया (विशेषकर 'X' - पूर्व में ट्विटर) पर की गई टिप्पणियों को विश्लेषण के लिए एकत्र किया जाएगा।
- **अकादमिक और विशेषज्ञ विश्लेषण** : समाजशास्त्रियों, राजनीतिक विश्लेषकों और स्तंभकारों द्वारा इस विषय पर लिखे गए जर्नल लेखों, ऑनलाइन लेखों और विशेषज्ञ टिप्पणियों को भी अध्ययन में शामिल किया जाएगा ताकि एक संतुलित और बहुआयामी दृष्टिकोण विकसित किया जा सके।

2. आँकड़ा संग्रहण की विधि (Data Collection

Method) : आँकड़ों का संग्रहण एक निश्चित समय-सीमा के भीतर किया जाएगा, जो जाति गणना की घोषणा (जून 2022) से लेकर आँकड़े जारी होने के छह महीने बाद (अप्रैल 2024 तक) की अवधि को कवर करेगा। उपरोक्त स्रोतों से प्रासंगिक सामग्री को व्यवस्थित रूप से संकलित करने के लिए ऑनलाइन आर्काइव्स, समाचार डेटाबेस और अकादमिक पोर्टलों का उपयोग किया जाएगा।

3. विश्लेषण की विधि (Method of Analysis)

एकत्रित गुणात्मक आँकड़ों का विश्लेषण करने के लिए निम्नलिखित विधियों का उपयोग किया जाएगा:

- **विमर्श विश्लेषण (Discourse Analysis)**: यह इस शोध की प्रमुख विश्लेषण पद्धति होगी। इसके माध्यम से यह जाँच की जाएगी कि राजनीतिक दल और मीडिया भाषा का उपयोग करके जाति गणना के 'अर्थ' का निर्माण कैसे कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, "सामाजिक न्याय", "हकमारी", "अगड़ा बनाम पिछड़ा", "तुष्टीकरण" जैसे शब्दों और नारों का उपयोग किस संदर्भ में और किस उद्देश्य से किया जा रहा है, इसका विश्लेषण किया जाएगा। यह विधि हमें ध्रुवीकरण को बढ़ावा देने वाले नैरेटिव को पहचानने में मदद करेगी।
- **विषय-वस्तु विश्लेषण (Content Analysis)** : मीडिया रिपोर्टों और राजनीतिक भाषणों में कुछ विशेष विषयों, शब्दों और अवधारणाओं की आवृत्ति और प्रमुखता का विश्लेषण करने के लिए इस विधि का उपयोग किया जाएगा। इससे यह समझने में मदद मिलेगी कि कौन से मुद्दे बहस के केंद्र में थे और किन मुद्दों को हाशिए पर रखा गया।
- **तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis)** : इस विधि का उपयोग विभिन्न राजनीतिक दलों की प्रतिक्रियाओं की तुलना करने के लिए किया जाएगा। सत्ता पक्ष और विपक्ष ने जातिगत आँकड़ों को किस प्रकार प्रस्तुत किया, उनके तर्कों में क्या समानताएँ और

भिन्नताएँ थीं, इसका तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा।

4. शोध की सीमाएँ (Limitations of the Research)- यह अध्ययन अपनी प्रविधि के कारण कुछ सीमाओं से युक्त है :

- यह शोध द्वितीयक आँकड़ों पर निर्भर है, इसलिए यह आम नागरिकों के जमीनी स्तर के अनुभवों और धारणाओं को सीधे तौर पर शामिल नहीं करता है। लोगों के व्यक्तिगत साक्षात्कारों पर आधारित एक प्राथमिक शोध इसके निष्कर्षों को और अधिक पुष्ट कर सकता है।
- विश्लेषण की गुणात्मक प्रकृति के कारण, इसमें शोधकर्ता की व्याख्या और पूर्वाग्रह की एक न्यूनतम संभावना बनी रहती है, जिसे वस्तुनिष्ठता के सिद्धांतों का पालन करके कम करने का प्रयास किया गया है।
- सामाजिक ध्रुवीकरण एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है। यह अध्ययन गणना के तत्काल बाद के प्रभावों का एक स्नेपशॉट प्रस्तुत करता है; इसके पूर्ण सामाजिक परिणाम सामने आने में अधिक समय लग सकता है।

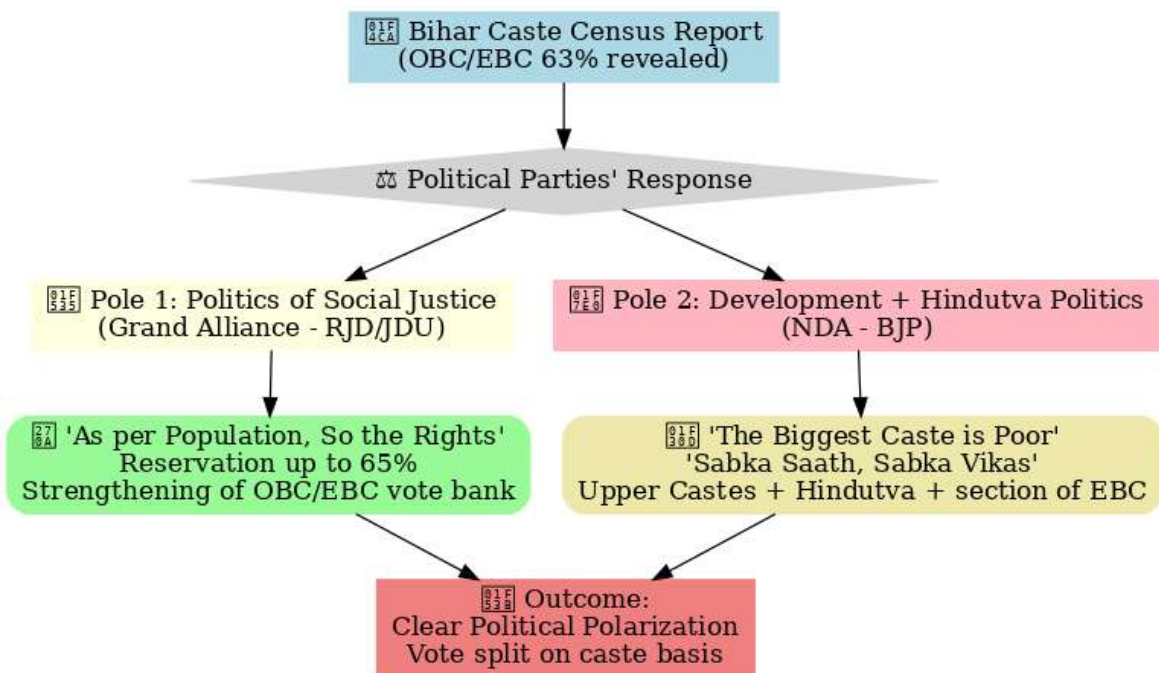
विश्लेषण एवं विवेचना : इस खंड का उद्देश्य बिहार जाति गणना के बहुआयामी प्रभावों का गहन विश्लेषण करना है। यह विवेचना इस बात की पड़ताल करेगी कि कैसे एक सांख्यिकीय दस्तावेज़, सामाजिक न्याय की आकांक्षाओं से परे जाकर, राजनीतिक ध्रुवीकरण का एक शक्तिशाली उत्प्रेरक बन गया और इसने बिहार के सामाजिक ताने-बाने पर दूरगामी प्रभाव डाला।

➤ **सांख्यिकी का राजनीतिकरण : पहचान के विमर्श का नया आधार-** गणना की रिपोर्ट का सबसे तात्कालिक प्रभाव केवल आँकड़ों का सामने आना नहीं था, बल्कि उन आँकड़ों के माध्यम से **जातिगत पहचान का 'सांख्यिकीय प्रमाणीकरण'** (Statistical Validation of Identity) था।

- **आँकड़ों से वैधता तक:** आधुनिक शासन प्रणालियों में, डेटा को वैधता का स्रोत माना जाता है। जब रिपोर्ट ने यह प्रमाणित कर दिया कि बिहार में OBC (27.12%) और EBC (36.01%) की संयुक्त आबादी 63.13% है, तो इसने पिछड़ी जातियों की राजनीतिक आकांक्षाओं को एक व्यक्तिपरक (subjective) दावे से वस्तुनिष्ठ (objective), मापने योग्य तथ्य में बदल दिया। इसने दशकों से चले आ रहे सामाजिक न्याय के आंदोलन को एक अकाट्य तर्क प्रदान किया, जिसे अब नज़रअंदाज़ करना असंभव था।
- **"जितनी आबादी, उतना हक़" - एक नए सामाजिक अनुबंध की मांग :** यह नारा केवल एक राजनीतिक जुमला नहीं, बल्कि संसाधन-वितरण के मौजूदा मॉडल को चुनौती देने वाला एक वैचारिक ढाँचा बन गया। इसने योग्यता-आधारित (Merit-based) व्यवस्था, जिसे अक्सर अगड़ी जातियों के प्रभुत्व को बनाए रखने वाले तंत्र के रूप में देखा जाता है, को सीधे तौर पर चुनौती दी। इस विमर्श ने पूरी बहस को आवश्यकता-आधारित या योग्यता-आधारित नीति-निर्माण से हटाकर **जनसंख्या-आधारित प्रतिनिधित्व** पर केंद्रित कर दिया, जिससे जाति, राज्य की नीतियों का सबसे प्रमुख चर (variable) बन गई।
- **राजनीतिक ध्रुवीकरण की संरचना: प्रतिस्पर्धी गोलबंदी का मॉडल-** जातिगत आँकड़ों ने बिहार के राजनीतिक परिदृश्य को स्पष्ट रूप से दो प्रतिस्पर्धी ध्रुवों में विभाजित कर दिया, जहाँ प्रत्येक पक्ष ने इन आँकड़ों की अपने वैचारिक दृष्टिकोण से व्याख्या की।
- **महागठबंधन की आक्रामक रणनीति: 'बहुजन' वोट का समीकरण :** सत्ताधारी महागठबंधन (RJD/JDU) ने इन आँकड़ों का उपयोग एक आक्रामक राजनीतिक रणनीति के तहत किया।

आरक्षण की सीमा को 50% से बढ़ाकर 65% करने का निर्णय केवल एक नीतिगत फैसला नहीं था, बल्कि एक राजनीतिक मास्टरस्ट्रोक था। इसने महागठबंधन को OBC/EBC समुदाय के निर्विवाद चैंपियन के रूप में स्थापित किया। इस कदम ने विपक्ष, विशेषकर भाजपा, को एक

कठिन स्थिति में डाल दिया: यदि वे इसका विरोध करते, तो उन्हें पिछड़ा-विरोधी करार दिया जाता; यदि वे समर्थन करते, तो वे अपने अगड़ी जाति के कोर वोट बैंक को नाराज़ करने का जोखिम उठाते।



यह मॉडल दिखाता है कि कैसे एक ही डेटासेट की दो अलग-अलग व्याख्याओं ने दो विपरीत राजनीतिक नैरेटिव को जन्म दिया। एक तरफ महागठबंधन ने इसे वर्गीय चेतना (पिछड़ा बनाम अगड़ा) को मज़बूत करने के लिए इस्तेमाल किया, तो दूसरी तरफ भाजपा ने इसे अपनी व्यापक हिंदुत्व और विकास की राजनीति में समाहित करने की कोशिश की।

- **भाजपा का रक्षात्मक प्रति-विमर्श: जाति से वर्ग और राष्ट्र की ओर :** भाजपा ने इस चुनौती का सामना एक बहु-आयामी रक्षात्मक रणनीति के साथ किया। उनकी रणनीति जाति-आधारित ध्रुवीकरण को कमजोर करने और बहस को अपने अनुकूल विषयों की ओर मोड़ने पर केंद्रित थी :

1. **जाति को वर्ग से प्रतिस्थापित करना:** "सबसे बड़ी जाति गरीब है" का नारा देकर भाजपा ने बहस को जाति की पहचान से हटाकर आर्थिक वर्ग पर केंद्रित करने का प्रयास किया।
2. **हिंदुत्व की व्यापक छतरी:** जातिगत विभाजन को पाटने के लिए, भाजपा ने एक व्यापक हिंदू पहचान को बढ़ावा दिया, यह तर्क देते हुए कि आंतरिक विभाजन समुदाय को कमजोर करते हैं।
3. **EWS को प्रस्तुत करना:** आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (EWS) के लिए आरक्षण पर जोर देकर, उन्होंने यह संदेश देने की कोशिश की कि वे आरक्षण के समर्थक हैं, लेकिन उनका आधार आर्थिक होना चाहिए, न कि केवल जाति।

विभाजन का चित्रांकन : इस रणनीतिक विभाजन को

निम्नलिखित चार्ट और डायग्राम के माध्यम से बेहतर समझा जा सकता है, जो दिखाते हैं कि कैसे एक ही

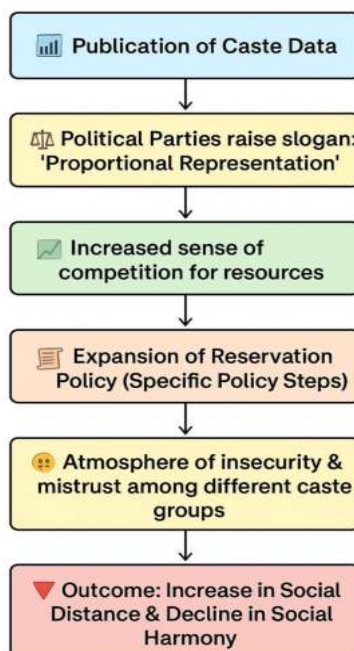
डेटासेट ने दो विपरीत राजनीतिक प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया।

चार्ट 1: जाति गणना पर राजनीतिक दलों की रणनीतियों की तुलना

मानदंड	महागठबंधन (RJD/JDU)	एनडीए (BJP)
मुख्य नैरेटिव	सामाजिक न्याय, आनुपातिक प्रतिनिधित्व	सबका साथ, सबका विकास, गरीब कल्याण
लक्ष्य समूह	OBC, EBC, और मुस्लिम मतदाता	अगड़ी जातियाँ, EBC का एक वर्ग, दलित और व्यापक हिंदू मतदाता
प्रमुख नारा	"जितनी आबादी, उतना हक़"	"सबसे बड़ी जाति गरीब है"
नीतिगत कार्रवाई	आरक्षण की सीमा 50% से बढ़ाकर 65% करना।	आर्थिक आधार पर आरक्षण (EWS) पर जोर, जातिगत विमर्श को राष्ट्रीय मुद्दों से जोड़ना।
परिणामी प्रभाव	OBC/EBC वोट बैंक का सुदृढ़ीकरण और ध्रुवीकरण।	अगड़ी जातियों का समीकरण और जाति की राजनीति को हिंदुत्व की राजनीति से संतुलित करने का प्रयास।

➤ सामाजिक परिणाम : राजनीतिक प्रतिस्पर्धा से सामाजिक दरार तक

Process of Social Polarization



राजनीतिक अखाड़े में शुरू हुई यह प्रतिस्पर्धा धीरे-धीरे सामाजिक संबंधों में रिसने लगी, जिससे सामाजिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया को बल मिला।

● 'शून्य-राशि के खेल' (Zero-Sum Game) की अवधारणा : सीमित संसाधनों (सरकारी नौकरियाँ, शिक्षण संस्थानों में सीटें) के संदर्भ में, जाति

गणना ने इस धारणा को मज़बूत किया कि यह एक 'शून्य-राशि का खेल' है, जहाँ एक जाति समूह का लाभ अनिवार्य रूप से दूसरे समूह की हानि है। आरक्षण का 65% तक विस्तार इस अवधारणा का सबसे ठोस उदाहरण बन गया। इसने एक अगड़ी जाति के युवा के मन में यह डर पैदा किया कि उसके अवसर छीने जा रहे हैं, जबकि एक EBC युवा के लिए यह दशकों से वंचित हक़ की प्राप्ति थी। यह मनोवैज्ञानिक विभाजन सामाजिक ध्रुवीकरण का मूल कारण है।

● **सामाजिक विश्वास का क्षरण और बढ़ती सामाजिक दूरी** : समाजशास्त्र में "सामाजिक दूरी" (Social Distance) की अवधारणा विभिन्न समूहों के बीच अपनेपन या अलगाव की भावना को मापती है। जाति-केंद्रित राजनीतिक बयानबाज़ी और मीडिया बहसों ने निश्चित रूप से विभिन्न जाति समूहों के बीच इस दूरी को बढ़ाया है। रोज़मर्रा की बातचीत, सोशल मीडिया पर होने वाली बहसों और स्थानीय स्तर पर बने संबंधों में जाति की चेतना पहले से कहीं अधिक हावी हो गई है। इसने अंतर-जातीय मित्रता, व्यावसायिक संबंधों और सामुदायिक सौहार्द पर एक सूक्ष्म लेकिन नकारात्मक प्रभाव डाला है, जिससे सामाजिक विश्वास में कमी आई है।

● **अंतः-समूह गतिशीलता और नए संघर्षों के बीज** : ध्रुवीकरण केवल 'अगड़े बनाम पिछड़े' तक सीमित नहीं है। इन आँकड़ों ने पिछड़े और अति-पिछड़े समूहों के भीतर भी एक नई गतिशीलता को जन्म दिया है। अब यह सवाल उठ खड़ा हुआ है कि 63% के इस बड़े हिस्से का बँटवारा **आपस में** कैसे होगा? क्या संख्या में अधिक शक्तिशाली OBC जातियाँ (जैसे यादव) EBC की छोटी-छोटी जातियों पर हावी हो जाएंगी? इससे भविष्य में एक नए प्रकार के अंतः-समूह संघर्ष की नींव पड़ सकती है, जो बिहार की राजनीति को और भी जटिल बना देगा। संक्षेप में, यह विश्लेषण स्थापित करता है कि बिहार

जाति गणना, सामाजिक न्याय के एक उपकरण के रूप में शुरू होकर, एक ऐसे राजनीतिक उत्प्रेरक में बदल गई जिसका विभिन्न दलों ने कुशलतापूर्वक अपने हितों के लिए उपयोग किया। इस प्रक्रिया ने न केवल मौजूदा राजनीतिक दरारों को और गहरा किया है, बल्कि संसाधन-वितरण को एक प्रतिस्पर्धी, जाति-आधारित संघर्ष के रूप में प्रस्तुत करके सामाजिक विभाजन को भी बढ़ाया है, जो बिहार में पहचान की राजनीति के एक नए और संभवतः अधिक विवादास्पद चरण का सूत्रपात कर सकता है।

निष्कर्ष

यह शोध-पत्र बिहार जाति गणना के सामाजिक ध्रुवीकरण पर पड़े प्रभावों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करने के उद्देश्य से प्रारंभ हुआ था। प्रस्तुत साक्ष्यों और विश्लेषण के आधार पर, यह अध्ययन इस अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचता है कि बिहार की जाति गणना, जो सामाजिक न्याय की भाषा में प्रस्तुत की गई थी, विरोधाभासी रूप से समकालीन राजनीतिक परिदृश्य में **सामाजिक ध्रुवीकरण के एक प्रमुख चालक** के रूप में उभरी है। यह एक जटिल परिघटना है, जिसके परिणाम सामाजिक न्याय की आकांक्षाओं और सामाजिक विखंडन की कठोर वास्तविकताओं के बीच गहराई से विभाजित हैं।

शोध के मुख्य निष्कर्षों का संक्षेप

1. **परिकल्पना की पुष्टि और सैद्धांतिक प्रासंगिकता** : अध्ययन की यह केंद्रीय परिकल्पना कि जाति गणना ने जातिगत चेतना को तीव्र कर राजनीतिक गोलबंदी को बढ़ावा दिया और परिणामस्वरूप सामाजिक ध्रुवीकरण में वृद्धि हुई, विश्लेषण के प्रत्येक चरण में पुष्ट होती है। यह निष्कर्ष **पहचान की राजनीति (Identity Politics)** और **संसाधन प्रतिस्पर्धा (Resource Competition)** के समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के अनुरूप है। ये सिद्धांत तर्क देते हैं कि जब एक संसाधन-सीमित समाज में

समूह की पहचान को प्रमुख बना दिया जाता है, तो यह अनिवार्य रूप से समूहों के बीच संघर्ष और तनाव को जन्म देता है।

2. **न्याय का उपकरण बनाम विभाजन का हथियार** : शोध का सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष इस गणना की दोहरी प्रकृति को उजागर करता है। एक ओर, इसने दशकों से हाशिए पर मौजूद समूहों की स्थिति को प्रमाणित करने और उनके अधिकारों का दावा करने के लिए एक आवश्यक **"न्याय का उपकरण"** प्रदान किया। वहीं दूसरी ओर, इसके राजनीतिकरण ने इसे विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच अविश्वास पैदा करने और वोट बैंकों को मजबूत करने के लिए एक **"विभाजन के हथियार"** में बदल दिया। यह भारत में सकारात्मक कार्रवाई (affirmative action) की राजनीति के केंद्रीय विरोधाभास को दर्शाता है।

3. **राजनीतिक विमर्श का प्रतिगमन** : यह गणना बिहार की राजनीति में एक संभावित प्रतिगमन का संकेत देती है—2010 के दशक के "विकास" और "सुशासन" के विमर्श से हटकर, 1990 के दशक की मंडल-शैली की गहन पहचान की राजनीति की ओर वापसी। हालाँकि, इस बार यह राजनीति केवल भावनात्मक अपीलों पर नहीं, बल्कि सटीक आँकड़ों पर आधारित है, जो इसे और भी अधिक शक्तिशाली और विवादास्पद बनाती है।

4. **सामाजिक पूंजी का क्षरण** : राजनीतिक ध्रुवीकरण का सबसे गहरा और दीर्घकालिक प्रभाव **सामाजिक पूंजी (Social Capital)**—अर्थात् विश्वास, मानदंड और नेटवर्क जो सामाजिक सहयोग को संभव बनाते हैं—का क्षरण है। जब समाज 'शून्य-राशि के खेल' (Zero-Sum Game) की मानसिकता से ग्रस्त हो जाता है, तो यह अंतर-जातीय संबंधों में संदेह और दूरी पैदा करता है, जिससे सामुदायिक सद्भाव और सामूहिक प्रगति की संभावनाएँ कमजोर

होती हैं।

व्यापक निहितार्थ और राष्ट्रीय संदर्भ

बिहार का यह अनुभव केवल एक राज्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह राष्ट्रव्यापी जाति गणना की बढ़ती माँग के लिए एक महत्वपूर्ण **केस स्टडी** के रूप में कार्य करता है। यह एक प्रयोगशाला की तरह दिखाता है कि ऐसे कदम के संभावित लाभ क्या हैं, लेकिन साथ ही यह सामाजिक सामंजस्य के लिए इसके गंभीर जोखिमों को भी उजागर करता है।

यह अध्ययन भारतीय लोकतंत्र के एक मौलिक द्वंद्व को रेखांकित करता है: **मान्यता बनाम सुदृढीकरण का द्वंद्व (The Dilemma of Recognition vs. Reinforcement)**। ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने के लिए, राज्य को जाति की पहचान को मान्यता देनी पड़ती है। लेकिन ऐसा करने की प्रक्रिया में, वह अनजाने में ही जाति को एक प्राथमिक सामाजिक श्रेणी के रूप में सुदृढ़ कर देता है। न्याय और एकता के बीच इस नाजुक संतुलन को साधना ही भारत की सामाजिक न्याय परियोजना की सबसे बड़ी और अनसुलझी चुनौती है।

भविष्य के शोध की दिशा

इस शोध के निष्कर्ष भविष्य के अध्ययनों के लिए कई रास्ते खोलते हैं:

- **मतदान व्यवहार का मात्रात्मक विश्लेषण** : 2024 के लोकसभा और 2025 के बिहार विधानसभा चुनावों में मतदान पैटर्न का एक तुलनात्मक अध्ययन यह मापने के लिए किया जाना चाहिए कि गणना ने विभिन्न जातियों के वोटों के समीकरण को कितना प्रभावित किया।
- **सामाजिक पूंजी पर दीर्घकालिक अध्ययन** : ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में दीर्घकालिक नृवंशविज्ञान (longitudinal ethnographic) अध्ययनों के माध्यम से यह जांच की जानी चाहिए कि इस घटना ने अंतर-जातीय विवाह, सामाजिक मेलजोल और

रोजमर्रा के आर्थिक व्यवहार को कैसे बदला है।

• **नीतिगत प्रभाव का मूल्यांकन :** यह विश्लेषण करना महत्वपूर्ण है कि क्या बड़े हुए आरक्षण का वास्तविक लाभ लक्षित अति-पिछड़े समूहों तक पहुँच रहा है, या इसका अधिकांश फायदा प्रमुख पिछड़ी जातियों द्वारा ही उठाया जा रहा है। अंततः, बिहार जाति गणना एक युगांतकारी घटना है जिसने राज्य और राष्ट्र को आत्म-मंथन के लिए विवश किया है। भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि बिहार का समाज इस आँकड़ों के आईने में खुद को कैसे देखता है—एक विभाजित अतीत के कैदी के रूप में, या एक अधिक न्यायसंगत भविष्य के वास्तुकार के रूप में।

संदर्भ सूची (References) :

1. Ambedkar, B. R. (1936). Annihilation of Caste.
2. Chandra, K. (2004). Why Ethnic Parties Succeed: Patronage and Ethnic Head Counts in India. Cambridge University Press.
3. Chibber, P., & Verma, R. (2014). The Indian Voter: A Composite Portrait. In Party System in India (pp. 52-79). Oxford University Press.
4. Deshpande, S. (2007). Exclusive Inequalities: The Caste Census Debate. Economic and Political Weekly, 42(24), 2246–2249.
5. DiMaggio, P., Evans, J., & Bryson, B. (1996). Have American's Social Attitudes Become More Polarized? American Journal of Sociology, 102(3), 690–755.
6. Jaffrelot, C. (2003). India's Silent Revolution: The Rise of the Lower Castes in North India. Permanent Black.
7. Kothari, R. (Ed.). (1970). Caste in Indian Politics. Orient Longman.
8. Srinivas, M. N. (1952). Religion and Society among the Coorgs of South India. Oxford University Press.
9. Verma, A. K. (2010). Bihar: A grand social experiment. In Caste and Democratic Politics in India (pp. 147-168). Permanent Black.
10. Yadav, Y. (2019). Making Sense of Indian Democracy: A Theory of the Indian State and Its Political Actors. Orient BlackSwan.
11. बिहार सरकार। (2023). बिहार जाति आधारित गणना रिपोर्ट. सामान्य प्रशासन विभाग, बिहार सरकार।

•